प्रवचन नं. १९ गाथा-५ ता. २७-६-७८ मंगलवार जेठ वदि-७ सं.२५०४

यहाँ तो - ऐसा कहा कि मैं अपने निज वैभव से बात कहूँगा - परंतु निज वैभव में निमित्त कौन था ? - ऐसा कहा कि वीतराग की वाणी शब्दब्रह्म है। सभी पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली - ऐसा कहा जाता है, कहा है न ? समस्त वस्तुओं को बतलानेवाले, यहाँ यह नहीं कि सर्वज्ञ कुछ बोल नहीं सकते, वह बात यहाँ नहीं है, वह तो अपेक्षित बात हुयी, गोम्मटसार में लिखा (है) न ? कि अनंतवाँ भाग कहते हैं। यहाँ तो कहा जाता है कि वस्तु स्वरूप के प्रकाशक हैं। शास्त्र वह शब्दब्रह्म है। समस्त वस्तुओं को दिखलानेवाले। एवं अंतिमगाथा में - ऐसा आया कि ४१५ (गाथा में) कि आत्मा है वह विश्वसमय है, अर्थात कि विश्व को जाननेवाला है। अंतिम ४१५ में संपूर्ण जाननेवाला आत्मा है। उसे प्रकाशित करनेवाली वाणी यह शब्दब्रह्म पूरी दिखलानेवाली है, अंत में ४१५ गाथा में आया है, समझ में आया ?

संपूर्ण-सभी वस्तुयें, गाथा में है न ! `सकल उद्भासि, सकलोद्भासि,' तीनकाल ***तीनलोक के जो पदार्थ हैं, वाणी उन सभी को कहनेवाली है। ऐसी बात ली है। चाहे अनंतवां भाग आया हो - ऐसा कहा, परंतु उसमें आया, सभी का संकेत सभी आया है। समझ में आया ? इसमें सभी आने पर भी पंचाध्यायी में इसप्रकार आता कि बारह अंगों में स्थूल कथन है परंतु उस कथन में कहने योग्य जितना सूक्ष्म कहा है*** वह सभी कथन आया है। प्रथम बात समस्त पदार्थो एवं वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाला है। अतः ४१५ वीं (गाथा) में - ऐसा कहा है कि आत्मा विश्वसमय है। भगवान आत्मा विश्वसमय है - ऐसा कहा है। तीनकाल तीनलोक सभी को जाने, (वह) आत्मा और उसे कहनेवाली वाणी, भी शब्दब्रह्म है। आत्मा जो विश्वसमय है सभी को जाननेवाला है। उसी प्रकार वाणी भी सभी को कहनेवाली है। आहाहा ! उस वाणी में भी कहने की ऐसी शक्ति है। आत्मा में सभी को जानने की शक्ति है। आहाहा !

विश्व समय (अर्थात) सभी को जाननेवाला आत्मा, उसीप्रकार सभी को कहनेवाली वाणी को शब्दब्रह्म कहा क्योंकि वह सभी को बतलाती है। आहाहा ! और उसकी मुद्रा स्यात्पद है। `स्यात्' पद की मुद्रावाला - ऐसा कहा है न ? छाप है `स्यात्' छाप उसकी छाप है। आहाहा ! जैसे आत्मानुभव की मुहर-छाप अतीन्द्रिय (आनंद) है। आहाहा ! आत्मा के अतीन्द्रिय अनुभव में अतीन्द्रिय आनंद की मुहर छाप है उसी प्रकार वीतराग की वाणी में `स्यात्' पद की मुहर छाप है। समझ में आया कुछ ? कथंचित किस अपेक्षा से कहना चाहते है वह सभी इसमें आ जाता है। `स्यात्'

पद की मुद्रावाला शब्दब्रह्म अर्थात ? अरहंत का परमागम, अरहंत का परमागम शब्दब्रह्म है। क्योंकि सभी पदार्थों को कहनेवाला है। आहाहाहा ! तीनकाल तीनलोक अनंत गुण, अनंत द्रव्य, अनंत पर्याय सिद्धों की एवं केवलियों की भी सभी को प्रकाशित करनेवाली वाणी है। वाणी में कुछ कहने से रह जाये - ऐसा नहीं। आहाहा ! उसीप्रकार भगवान आत्मा कम जाने - ऐसा नहीं। *(आत्मा)* ***विश्वसमय है। सभी को जाननेवाला प्रभु है। आहाहा ! श्रुतज्ञान में भी वह सभी को जाननेवाला है।*** आहाहा !

`स्यात्' अर्थात किसी अपेक्षा कहना। परमागम को शब्दब्रह्म कहा, उसका कारण **अरहंत के परमागम में जो कहे जा सकें ऐसे सामान्य धर्म, वचन गोचर सर्व धर्मों का वर्णन आता है।** एवं वचनों से अगम्य ऐसे विशेष धर्मों का अनुमान कराया जाता है। तो भी - ऐसा कहा जाता कि कहने में सभी आता है। आहाहा ! जो कुछ सामान्य है, सामान्य का अर्थ, जो (सीधे) कहे जा सकें, वे सामान्य धर्म (गुण) कहलाते हैं। एवं अनुमान द्वारा सिद्ध किया जाता है कि यह वस्तु है जो अनंत धर्म स्वरूप ही है। आहा ! आता है न अनंतधर्म शक्ति ? इसी में ? अनंत धर्म अर्थात अनंत गुण जिसमें है। वह अनंत धर्म स्वरूप ही है। आहाहा ! इसे (परमागम को) उसकी प्राप्ति में निमित्त कहा। परंतु वहाँ तो - ऐसा कहा कि उसकी प्राप्ति के लिये अन्य कोई कारण ही नहीं।

इस द्रव्य का जब (वचनामृत में) वर्णन किया तो, यह द्रव्य - ऐसा है कि उसके कार्य के लिये अन्य कारण की आवश्यकता नहीं और किसी के कार्य का वह कारण नहीं। रागादिक या परद्रव्य की पर्याय का वह कारण नहीं। इसमें - ऐसा गुण है, शब्दब्रह्म उसे भी प्रकाशित करनेवाला है। वाणी द्वारा वह आया है - ऐसा कहा है। आहाहाहा ! कुछ समझ में आया ? वीतराग की शब्दब्रह्म अर्थात व्यापक वाणी उसमें - ऐसा आया है, कि तुम्हारा प्रभु आनंद का नाथ है। आहाहा ! उसके कार्य के लिये किसी अन्य कारण की अपेक्षा नहीं, एवं पर के कार्य के लिये इस द्रव्य के कारण की अपेक्षा नहीं, आहाहा ! - ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। - ऐसा शब्दब्रह्म में आया है एवं विश्वसमय ऐसे भगवान ने उसीप्रकार जाना है, आत्मा ने भी उसीतरह जाना। आहाहा ! मैं किसी का कारण नहीं, मैं किसी का कार्य नहीं। आहाहा ! देखो न इसकी शैली तो देखो ! ओहोहोहो ! गजब शैली है न !! गहराई से विचार करे तो उसे वाणी द्वारा पूरा कहने की ताकत सिद्ध की है। अतः पूरण जाननेवाला है इसलिये उसे विश्वसमय, विश्वब्रह्म (कहा जाता है) आहाहा ! एवं वाणी सभी को कहनेवाली अतः शब्दब्रह्म है यह आत्मब्रह्म, वह शब्दब्रह्म, दोनों पूरण है। आहाहा !

भगवान पूरण जाननेवाले है, वाणी पूरण कहनेवाली है। श्रीमद्जी कहते हैं ***`जो***

स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह न सके उसको वह भगवान जो, वह तो उसकी (ज्ञायककी) महिमा बताने को कि वाणी द्वारा कितना कहा जा सके - ऐसा (भगवान की) वाणी में सभी आया है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अतः भगवान को आत्म-ब्रह्म कहा, वाणी को शब्दब्रह्म कहा आत्मा सभी को जाने इसलिये सर्वब्रह्म कहा एवं वाणी सभी को कहती है, अतः शब्दब्रह्म कहलाती है। आहाहा !

इसप्रकार सामान्य कथन में वह पूर्ण कही जाती है शेष अन्य सभी वचन अचोगरों को अनुमान से कहा गया। वह सभी वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाली है। शब्दब्रह्म सभी वस्तुओं को कहनेवाला है। आहाहा ! है ! आचार्य अमृतचन्द्र की तो टीका है `किल सकलोद्भासिस्यात्यःमुद्रितशब्दब्रह्म... पदमुद्रित शब्दब्रह्म' आहाहा ! अतः सर्वव्यापी कहा जाता है, इसलिये वाणी को शब्दब्रह्म कहते हैं। आहाहा ! उसीकी उपासना से हमारा निज वैभव प्रगटा है। हमारा आनंद स्वरूपी निज वैभव, सर्वज्ञ की शब्दब्रह्म वाणी वह इसमें निमित्त थी - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य किसी की वाणी आत्म के धर्म को प्रगट करने में निमित्त भी नहीं हो सकती, निमित्त से होता तो नहीं। परंतु वीतराग की वाणी के अतिरिक्त अन्य वाणी निमित्त भी नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं। यहाँ वीतराग की वाणी को निमित्त कहा परन्तु उससे (कार्य) होता नहीं, परंतु निमित्त हो तो यही हो। समझ में आया ? आहाहा !

यह एक बात कही। कैसा है मेरा निज वैभव, है न ! कैसा है मेरे आत्मा का निज वैभव। यह एक बात कही - इस वैभव को प्रगट करने में, (अर्थात) विश्वब्रह्म को प्रगट करने में निमित्त शब्दब्रह्म है, वह शब्दब्रह्म भगवान की वाणी है। आहाहाहा ! ***इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान की वाणी के अतिरिक्त कोई अन्य कल्पित वाणी बोले जो आत्मधर्म को प्रगट करने में निमित्त भी नहीं।*** आहाहा ! बहुत भरा है। अल्प भाषा में भाव बहुत है। आहाहा ! और पूरा कहनेवाली सर्वज्ञ की वाणी निमित्त - ऐसा ही पूर्ण जाननेवाला भगवान (आत्मा) शब्दब्रह्म (निमित्त) आत्मब्रह्म, वह उपादान। आहाहाहा ! वह दशा प्रगटी अपने आत्मब्रह्ममें से परंतु उसे शब्दब्रह्म निमित्त है, आत्मब्रह्ममें से प्रगटा है परंतु है निमित्त यह (शब्दब्रह्म), आहाहा !

गुरु की वाणी भी केवली का अनुसरण करनेवाली है, इसलिये वह निमित्त हो सकती है परंतु अज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं हो सकती। समझ में आया कुछ ? (श्रोता :- बहिन श्री ने भी गुरु की (आपकी) वाणी की बहुत महिमा की है। आहाहा ! उसमें तो बहुत आ गया। समझ में आया ? दो, दो अर्थात एक विश्वब्रह्म एक शब्दब्रह्म उपादान और निमित्त है, उसके निज वैभव में निमित्त - यहाँ इतनी बाते कहीं। आहाहा !

`पुनश्च वह निज वैभव कैसा है ?' आहाहाहा ! `समस्त जो विपक्ष' समस्त विपक्ष,

(अर्थात) सत्य से विरुद्ध कहनेवाली सभी, जितने विपक्ष हैं... आहाहा ! `अन्यवादियों द्वारा ग्रहण किये गये सर्वथा एकांतरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ,' आहाहा ! वह झूठा है, एकांत है - ऐसा निराकरण करने में समर्थ कौन ? `जो अति निस्तुष निर्बाध युक्ति,' सर्वज्ञ की वाणी के अतिरिक्त सभी अन्यवादी, जितने अन्यवादियों के कथन हैं। वे सर्वथा एकांत नयपक्ष हैं। झूठे है उनका निराकरण करने में, निर्णय करने में, कौन निर्णय लेने में समर्थ, अति निस्तुष निर्बाधयुक्ति। आहाहा ! `अति' है न ? निस्तुष, छिलके बिना का अखण्ड दिखलाये ऐसी। आहाहा ! अति निस्तुष, निर्बाधयुक्ति, अंदर से ऐसी युक्ति आये कि जिसमें बिलकुल छिलका (मलिनता) नहीं, खण्ड नहीं, अखण्ड जिस प्रकार है, उसी प्रकार आहाहा ! `उसके अवलम्बन से जिसका जन्म हुआ है', अति निस्तुष निर्बाध युक्ति, निराकरण में समर्थ, अन्य (दूसरे) असत्य है इसप्रकार के निराकरण में जो समर्थ है, ऐसी अति निस्तुष युक्ति। आहाहाहा ! बहुत समाया है।

अमृतचन्द्राचार्य की इस टीका काल में श्वेताम्बर पंथ तो था, कुन्दकुन्दाचार्य के समय में भी था। यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं। अरहंत के मुख से जो वाणी निकली शब्दब्रह्म, वह निमित्त है। और उनसे जितने विपक्ष हैं, वह सभी झूठे हैं - ऐसा निर्णय करने में, अति निस्तुषयुक्ति, न्याय उससे मेरा जन्म है। आहाहा ! है न ? उसके अवलम्बन से जिसका जन्म है। आहाहा ! यों ही नहीं माना, अति निस्तुष-अखण्डयुक्ति के न्याय से, दूसरे सभी पदार्थ कहनेवाले एकांती हैं। आहाहाहाहा ! क्या वाणी !! इसप्रकार निराकरण करके यह मेरा निज वैभव उत्पन्न हुआ है। आहाहा ! एक सर्वज्ञ परमेश्वर उनकी यह वाणी शब्दब्रह्म उसमें निमित्त थी, हमारा स्वरूप उपादान में और वह निमित्त में अन्यमति के जितने भी विपरीत रास्ते हैं, उन सभी का निराकरण अति अखण्डयुक्ति से करके, हमें हमारे निज वैभव... वह उसका निराकरण करना है कि वे सभी झूठे है। आहाहा ! बहुत भर दिया है, ... कठिन लगे अभी तो जगत को।

यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्यदेव एक हजार वर्ष पहले हुये, यह गाथा तो दो हजार वर्ष पहले की है और यह आशय तो अनंत काल से चला ही आता है। इसमें अमृतचन्द्राचार्य - ऐसा कहते हैं। आहा ! और वह स्वयं कहेंगे न (कुन्दकुन्दाचार्यदेव के लिये कहेंगे) उनकी बात ही है। उनकी भाषा में जो भाव हैं, और उसी भाव का ही स्पष्टीकरण है उसी भावका ही उद्‌घाटन है। आहाहा ! अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति, उसके अवलम्बन से... यह (जो) लोग अज्ञानी एकांत कहनेवाले हैं - इसप्रकार अखण्डयुक्ति से, न्याय से, निर्बाध रीति से निराकरण करके... और मेरा इसमें जन्म है। मेरे निज वैभव

का इसमें जन्म है। उसे झूठा सिद्ध करके अति निस्तुष युक्ति से... उसमें मेरा (जन्म है) निज वैभव है। आहाहा ! बहुत अधिक समाया है !

मुनियों ने - ऐसा कहा है कि वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनि मनवाये (तो) निगोद जाये। यह शब्दब्रह्म की वाणी है, वाणी में इसप्रकार आया था। वैसे भाव में आकर वाणी निकली है। आहाहा ! मेरे मुनिपनेरूप अनुभव की दशा में एकांत कहनेवाले... सर्वज्ञ की वाणी के अलावा, उसका अखण्ड युक्ति से, न्याय से सिद्ध करके, मेरा वैभव प्रगट हुआ है। आहाहाहा ! कठिन काम है इसमें तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों को मिलाने जायें तब एकत्र हो जायें - ऐसा नहीं इस प्रकार आवाज उठाते है। उनके कहे हुये देव-गुरु-शास्त्र... आहाहा ! अखण्ड न्याय युक्ति से सिद्ध करके कि यह बात झूठी है, इसप्रकार मेरे निज वैभव का जन्म हुआ है। आहाहा ! कठिन काम है। अधिकांशतः तो सभी वेदांतादिकों का निराकरण है, `समस्त' शब्द (लिखा) है न ? समस्त शब्द है न ? समस्त विपक्ष जितने विपक्ष हैं... आहाहा ! वीतराग के शब्दब्रह्म द्वारा अनेकांतमयी जो कहा गया पूरा स्वरूप, उससे (भिन्न) विपक्ष है। आहाहा ! उनका एकांत है - इसप्रकार निराकरण करने में समर्थ है। अति अखण्ड न्याय, मेरी निर्बाध युक्ति, जिस युक्ति को कोई विघ्न कर सके नहीं, उस युक्ति का कोई खण्डन कर सके नहीं।

निर्बाध युक्ति... उसके अवलम्बन से जिसका जन्म हुआ है। आहाहाहाहा ! टीका, टीका बहुत गजब (की) है न ! यह सनातन जैन धर्म की व्याख्या है। आहाहा ! दो (बोल हुए) सर्वज्ञ की वाणी वह निमित्त और उसके विरोध का खण्डन करके निर्बाध युक्ति से निराकरण किया वह इसका निमित्त, अभाव। आहाहा !

`पुनश्च वह कैसा वैभव है ?' निज वैभव कैसा है ? `निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा'... आत्मा की व्याख्या की, आत्मा कैसा है ? कि निर्मल विज्ञानघन। आहाहा ! यह आत्मा की व्याख्या की। निर्मल विज्ञानघन... अकेले ज्ञान का पिण्ड, ज्ञान का समुद्र, अपरिमित ज्ञान स्वरूप जिसका... आहाहा ! - ऐसा विज्ञानघन प्रभु। विज्ञानघन कहा है न पीछे देखो ! वह भी निर्मलविज्ञानघन, निर्मल ज्ञानघन नहीं कहा, अकेले विज्ञान घन (भी) नहीं कहा, निर्मल विज्ञानघन, त्रिकाल - ऐसा जो आत्मा, आहाहा ! उसमें अंतर्निमग्न... उसमें अन्तर्निमग्न। विज्ञानघन भगवान इसमें अंतर्निमग्न... अंतर्मग्न नहीं अंतर्निमग्न मुनि की बात है न ! आहाहा ! उसमें, अंतर्निमग्न... मुनि एवं अरहंत सभी लेना है इसमें। आहाहा ! निर्मल विज्ञानघन प्रभु आत्मा... अकेले विज्ञान का समूह पिण्ड प्रभु आत्मा, आहाहा ! जिसमें विकल्प का अभाव - ऐसा न लेकर अस्ति से बात ली है। निर्मल विज्ञानघन भगवान... उसमें अंतर्निमग्न - यह पर्याय ली है। आहाहा !

निर्मलविज्ञानघन जो आत्मा, उसमें अंतर्निमग्न, उस द्रव्य में निमग्न, निमग्न, अंतर्निमग्न, अंतर में नि...मग्न विशेष मग्न (लीन)। आहाहा ! परमगुरु सर्वज्ञदेव। है ! आहा ! श्रीमद् (राजचन्द्र) में भी आता है सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु, यह विज्ञानघन - ऐसा आत्मा, उसमें अंतर्निमग्न थे। आहाहा ! चाहे भले (ही) भगवान से मिले नहीं, तो अभी साक्षात्, भी हम निश्चित कर रहे हैं... आहाहा ! निर्मल विज्ञानघन आत्मा। एक शब्द पर्याप्त है, निर्मल विज्ञानघन... आहाहा ! उसमें अंतर्निमग्न परमगुरु सर्वज्ञदेव और अपरगुरु गणधर... गणधर भी निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा उसमें अंतर्निमग्न हैं, यह भी अंतर्निमग्न सर्वज्ञ के समकक्ष इन्हें रखा (है) आहाहा !

अंतर्निमग्न परमगुरुसर्वज्ञदेव, `और अपरगुरु गणधर'... यह भी विज्ञानघन आत्मा उसमें अंतर्निमग्न थे। वहाँ से लेकर हमारे गुरु पर्यंत। आहाहा ! वह महाव्रत पालते थे एवं नग्न थे न, यह बात (कारण) नहीं। आहाहाहाहा ! गणधरादि से लगाकर, ओहोहो ! दो हजार वर्ष हुये प्रभु, कुन्दकुन्दाचार्य को इतने वर्ष हुये। यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य - ऐसा कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य तो प्रभु (भगवान महावीर) के लगभग पाँचसौ वर्ष (बाद हुये) वह भी - ऐसा कहते हैं, कि गणधर से लगाकर हमारे गुरु पर्यंत सभी विज्ञानघन - ऐसा प्रभु, उसमें अंतर निमग्न थे। आहाहाहा प्रभु आप तो छद्मस्थ हो न? सर्वज्ञ से लेकर अपने गुरु पर्यंत का आपने निश्चित (निर्णय) कर लिया? आहाहा !

यह सिद्धांत... यह सत् का उद्घाटन है यह। आहाहा ! गुरु कैसे हो ? कि सर्वज्ञगुरु ऐसे... कि विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न, ऐसे ही गणधर विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न... ऐसे हमारे गुरु, अरेरेरे ! पंचमकाल में भगवान के पांचसौ वर्ष बाद हो गये तथा उसके बाद (भ. महावीर) के बाद पन्द्रहसौ वर्ष हो गये अमृतचन्द्राचार्य को तो ? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के प्रति कहते हैं, परंतु हमारे गुरु परंपरा की परिपाटी यह... वह पंचमहाव्रत पालते तथा पांच समिति (रूप) व्यवहार था एवं निर्दोष आहार लेते थे, यह (क्रिया) कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा ! जो वंदन करने योग्य हो वह वस्तु नहीं। व्यवहार में नमस्कार (योग्य)... निश्चय से वंदन योग्य तो अपने (को) अपना स्वरूप है। आहाहा !

`अपरगुरु गणधर आदि से लेकर' हमारे गुरु... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारे गुरु... वास्तव में तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि हमारे गुरु पर्यंत... चाहे कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहते हैं परंतु मैं सत्युगुरु की परंपरा में आया हूँ। आहाहा ! मैं भी विज्ञानघन - ऐसा प्रभु, उसमें अंतर्निमग्न हूँ। आहाहा ! चाहे इस टीका का विकल्प उठा है (परंतु) उसमें मैं नहीं। आहाहा ! वाणी निकली उसमें मैं नहीं। टीका हो उसमें मैं

नहीं। ***आहाहा ! मैं तो विज्ञानघन भगवान आत्मा... उसमें अंतर्निमग्न, अंतर में 'निः विशेष मग्न' आहाहाहा ! कारण कि सम्यग्दृष्टि भी अंतर में मग्न है, परंतु निमग्न (विशेष) नहीं।*** आहाहा ! हमारे गुरु पर्यंत... प्रभु आपने सभी जान लिया ? सर्वज्ञ केवली के अतिरिक्त - ऐसा लोग कहते हैं न कि केवली के अतिरिक्त यह समकिती है कि नहीं, यह कौन जाने ? अभी तो - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! निश्चय समकित है कि व्यवहार यह केवली सिवाय कौन जाने - ऐसा कहते हैं। आहा ! वह तो कहते हैं कि हम जानते हैं। आहाहाहा ! हमारे गुरु थे, हमसे भिन्न वह भी विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न थे। - ऐसा हम जानते हैं आहाहा ! (जो) पंचमहाव्रत का विकल्प है उसमें यह सत्य धर्म आता है। आहाहा ! सत्यवाणी में यह आया है कि वे अंतर्निमग्न हैं यह हम बराबर जानते हैं। आहाहाहा !

कहाँ है, ऐसी बात ? दास। आहाहाहा ! विरोध करनेवाले लोगों को - ऐसा लगता कि देखो तो विदेह (क्षेत्र) का नाम लेकर विदेह से आये हैं - ऐसा कह कर बाहर में प्रसिद्धि (चाहते हैं) और बहिन को जातिस्मरण है न, कल ही आया है, इस प्रकार दोनों प्रसिद्ध होना चाहते हैं। हमारे गुरु हैं वह बस शांत, मुनिपने में प्रसिद्ध हैं, मुनिपना है - ऐसा कहते हैं, भाई अवश्य हो परंतु बापू इसके बिना उसका कल्याण नहीं। आहाहा ! मुनि तो उसको कहते हैं, आचार्य उनको कहते हैं, उपाध्याय उनको कहते है, कि जैसे अरहंत विज्ञानघन में निमग्न हैं उसी प्रकार निमग्न हैं। आहाहा ! दोनों की एक जैसी तुलना की है इसलिए नियमसार में कहा है न एक जगह श्लोक में (सिद्ध में और मुनि में) थोड़ा फर्क है। फिर दूसरे श्लोक (में कहा) (सिद्ध और मुनि में) फर्क माने वह झूठा है। आहाहा !

भाव लिंगी संत, भले द्रव्य लिंगी हों वैसा ही उन्हें विकल्प हो, नग्नपना हो वह कहीं मुनिपना नहीं। वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा ! उसे व्यवहार मोक्षमार्ग तो कहते हैं। यह तो राग को व्यवहार उसे आरोपित (किया), नहीं उसे कहना उसका नाम व्यवहार। आहाहा ! यह तो गजब काम क्रिया है न ! हजार वर्ष पूर्व अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं। आहाहा ! एकत्वविभक्त को दिखलायेंगे, अपने वैभव से। उस वैभव की परिभाषा स्वयं करते हैं, आहाहा ! भगवान के बाद कितने ? पांचसौ वर्ष बाद तो कुन्दकुन्द आचार्य हुये पंचमकाल में, तब उनके पंचमकाल के गुरु भी कहते हैं कि जैसे अरहंत अंतर्निमग्न थे वैसे ही हमारे गुरु अंतर्निमग्न थे। एक प्रवाह चला आता है। अरहंत से गणधर एवं हमारे गुरु पर्यंत वह विज्ञानघन (आत्मा) में अंतर्निमग्न हैं, ऐसी परंपरा चली आती है। उन्होंने हमसे कहा है - ऐसा कहना है। फिर यहाँ भी यही कहना है न ? उन्होंने हमारे ऊपर कृपा करके (कहा), अनुग्रह करके...

थोड़ा परंतु सत्य होना चाहिए बापू, कि जो सत्य तीनों कालों में पलटे नहीं - ऐसा होना चाहिए न ?

हमारे गुरु तक... अरहंत से लगाकर वर्तमान गुरु एक प्रवाह में लिये ? सभी एक जैसे अंतर्निमग्न लिये। फरक कहीं नहीं कि भाई अंतर्मग्न यहाँ कम है तथा केवली ज्यादा है। (अनुभव में पूरे) उनकी अवस्था में भले अंतर हो, पूर्णता (न हो) परंतु वहाँ भी आत्मा के स्वभाव का पूरा अंदर में लक्ष्य है, आहाहा ! दोनों सभी अरहंत से गणधर आचार्य परंपरा, जितने आचार्यों ने शास्त्र लिखे वह सभी आचार्य ऐसे थे। आहाहाहा ! प्रभु तुम पंचमहाव्रत धारी हो न ? छद्मस्थ हो न अतः असत्य न आजाये ? तब सत्यमहाव्रत न रहे। कहते हैं अरे सुनो, आहाहा ! हमसे जो कहा जाता है वह पूरा सत्य ही है। हमारे गुरु ऐसे अंतर्निमग्न थे जो कहा वह हमारा पूरा सत्य ही है। आहाहा !

`उनके प्रसादरूप से दिया गया' आहाहा ! ऐसे जो विज्ञानघन में अंतर्निमग्न थे उनसे प्रसादरूप में... प्रसादी हमको मिली। आहाहा ! `शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश'... आहाहाहा ! ***हम पात्र थे इसलिये हमें दिया - ऐसा न कह कर... आहाहा ! उनका प्रसाद... उनकी महेरबानी हुयी, आहा ! उनकी महेरबानी से मिला हुआ*** शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश... आहाहा ! कृपापूर्वक उपदेश महेरबानीपूर्वक कृपा करके हमारे गुरु ने हमको यह उपदेश दिया है। आहाहा ! देखो संतों की सन्त (गुरु) के प्रति विनय भक्ति। आहाहा ! उनके द्वारा प्रसाद रूप में दिया गया... आहाहा ! महेरबानी से दिया गया... क्या ? शुद्धात्मतत्त्व का... बस एक ही आत्मा का उपदेश दिया उन्होंने ? छह द्रव्य-गुण-पर्याय का यह सभी कुछ नहीं ? यह उपदेश उस अनुभूति के लिये ही है। दूसरा सभी उपदेश भी शुद्धात्मा के लिये ही है। आहाहा ! अन्य को जानने के लिये रूकना... इसके लिये नहीं। आहाहाहाहा ! दो बातें, उनकी महेरबानी से दिया गया। आहाहाहा ! गुरु ने महेरबानी की और अनुग्रहपूर्वक शुद्धात्मा का उपदेश (दिया)। आहाहाहा ! `उससे जिसका जन्म हुआ है' यह निमित्त अपेक्षा बात है यह।

हमारे आत्मा के आनंद का वैभव... उसमें प्रारंभ से ऐसे जो हमारे गुरु, वह हमको वाणी में निमित्त थे, उनकी वाणी यहाँ निमित्त (थी)। उन्होंने महेरबानी करके, कृपा करके उपदेश दिया, आहाहा ! उस शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया, कारण कि सभी कह कहकर, लाख करोड़ बात हो, (आशय) तो स्व का आश्रय करना है। यह एक बात है। हाँ। चाहे जैसी कथा हो कोई भी अनुयोग हो, स्व का आश्रय करना, इसलिये स्व के आश्रय की ही बात हमने की। आहाहा ! देखो यह वीतराग

कथा ! वीतराग जिनेश्वर देव की यह वाणी (एवं) संत उस वाणी को कहते हैं। आहा ! हमारे ऐसे आनंद का अनुभव... - ऐसा हमारी पर्याय का वैभव, वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी आनंद, आहाहा ! और जितने गुण हैं वह सभी हमारी जो भूमिका है (उसमें) व्यक्तरूप से... व्यक्तरूप अंश तो चौथे (गुणस्थान) में भी है, परंतु हमारी भूमिका में जितने व्यक्तरूप विशेषण हैं, आहाहा ! उसमें हमारे गुरु का शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश निमित्त था।

अब अपनी बात करते हैं।

पुनश्च, वह कैसा है वैभव ? `निरंतर झरता हुआ'... आहाहा ! कैसा आनंद। अंदरमें से निरंतर झरता... पहाड़में से जैसे पानी झरता है, उसीप्रकार भगवान आत्मामें से निरंतर (आनंद) झरता, `आस्वाद में आता,' वेदन में आता... आहाहा ! `सुन्दर जो आनंद,'... सुन्दर आनंद, अतीन्द्रिय आनंद... आहाहा ! निरंतर झरता, लगातार आता, एक तो यह बात, निरंतर अतीन्द्रिय आनंद आता है, किसी समय आया एवं किसी समय (नहीं आये) - ऐसा नहीं। आहाहा ! ***जितना आनंद तथा जितना सुख, जो अतीन्द्रिय ज्ञान और अंतर प्रतीति अर्थात सम्यग्दर्शन की जो निर्मल दशा प्रगटी (वह) निरंतर है, निरंतर वर्तती है।*** आहाहाहा ! प्रभु (कुन्दकुन्दआचार्य) आप छद्मस्थ हैं न ? पंचम काल के साधु... तब भी ऐसी बात जान गये ? आहाहा ! निरंतर, अंतर बिना आनंद अतीन्द्रिय आनंद, आनंद झरता है, आस्वाद में आता है, वह हमारे वेदन में आता है, आहाहाहा ! सुन्दर जो आनंद... आनंद को भी, उपमादी `सुन्दर'। जगत के विषयानंद में (जो) आनंद आता है वह तो दुःखरूप, आहाहाहा ! `सुन्दर' लालचन्द्रभाई कई बार बोलते हैं। यह सुन्दर शब्द, सुन्दर बात है, यह सुन्दर आयी - ऐसा कहते हैं।

`सुन्दर जो आनंद... उसकी मुद्रा से युक्त है' आहाहा ! भगवान की वाणी जिसप्रकार `स्यात्' मुद्रा से युक्त है, उसीप्रकार हमारा अनुभव भी अतीन्द्रिय आनंद की मुद्रा से युक्त है। आहाहा ! अकेला चारित्र ही प्रगटा है तथा अकेला ज्ञान प्रगटा है, वीर्य से ज्ञान की रचना अकेली हुयी है - ऐसा नहीं, उसके साथ अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। कहते हैं वह उसकी मुद्रा सें युक्ता है, आहाहा ! इसमें ज्ञान का इतना क्षयोपशम हो तो ही मुहर छाप है - ऐसा नहीं, उसी प्रकार क्षायिक सम्यक्दृष्टि हो तब ही वह मुद्रा संयुक्तता है एवं क्षयोपशम (सम्यक्त्व) हो तो मुद्रासंयुक्तता नहीं - ऐसा नहीं, आहाहा ! क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि (दोनों) आहाहा !

सुन्दर आनंद युक्त, मुहर छाप है, आहाहा ! जैसे पत्र में लगाते है न मुद्रा फिर आगे जाता है न, इस विधि से पत्र ले जाया जाता है, इसीप्रकार यह हमारे आनंद के अनुभव की मुद्रासंयुक्ता है। आहाहा ! हमारे मुनिपने में आनंद की मुद्रा

छाप आनंद की है। पंचमहाव्रत के विकल्प हैं, वह उसकी मुद्रा है, नग्नपना वह उसकी मुद्रा है - ऐसा नहीं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं वह उसकी मुद्रा छाप है, (- ऐसा नहीं) आहाहा ! अब ऐसी बात हो तब कहते हैं एकांत कहते हैं, पंच महाव्रतों को पालते-पालते शुभ से होगा - ऐसा नहीं कहते, (इस प्रकार लोग) कहते हैं, यह तो पंचम काल के मुनि - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! काल अनुकूल होता ही नहीं उसे, अनुभव से - ऐसा कहते हैं। अरहंतो का काल था और ऐसी उनकी दशा थी अंतर्मग्न... ऐसी ही हमारी अंतर्मग्नता है। आहाहाहा ! पंचम काल होने पर भी। आहाहा ! काल (पंचम) है इसलिये कहीं हीन दशा हो गई है। - ऐसा नहीं है। आहाहा !

सुन्दर जो आनंद, उसकी मुद्रा... है न ? अनवरत सुन्दर आनंद मुद्रित, आहाहा ! वह भी प्रचुर स्वसंवेदन रूप। आहाहा ! 'प्रचुरस्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन' आहाहाहा ! मुनि है न ! प्रचुर अर्थात बहुत (अधिक) ही संवेदनस्वरूप, स्वयं को अपना वेदन हो - ऐसा प्रचुरसंवेदनरूप स्वसंवेदन, उससे इसका जन्म है। यह उपादान लिया, वह निमित्त से बात की थी। आहाहा ! निमित्त हो (परंतु) उससे हो - ऐसा नहीं, परंतु - ऐसा निमित्त होता है, गमन करते हुये (पदार्थों को) धर्मास्तिकाय ही निमित्त हो, दूसरा निमित्त न हो, फिर भी निमित्त, उसे गमन कराता नहीं। आहाहा ! इसीप्रकार यहाँ अनुभव में निज वैभव में निमित्त हो तो वीतराग की वाणी ही, हमारे गुरु पर्यंत कहनेवाले साधुओं का उपदेश कहा है न ? यह हमको उपदेश मिला है। आहाहा ! उससे हमारा जन्म... यहाँ निमित्त - ऐसा ही हो - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ***फिर भी निमित्त से वहाँ होता नहीं, भाषा तो ऐसी है, उससे जिसका जन्म है। हाँ ? जिससे उसका जन्म है, ऐसे निमित्त से ही जिसकी उत्पत्ति है, उसका अर्थ यह कि उत्पत्ति काल में - ऐसा निमित्त हो - इसप्रकार।*** आहाहा !

वाणी से, निमित्त से हो तब तो सभी वाणी सुनते हैं। तब निमित्त कहाँ है ? आहाहा ! यहाँ तो मुद्रावाला प्रचुरस्वसंवेदनरूप... बहुत अधिक आत्मा का आनंद स्वरूप, प्रचुरस्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन आहाहा ! एक पांचमी गाथा, यदि (यह) अच्छीतरह से सुने और विचारे तो सभी झगड़े निकल जायें - ऐसा भाग्य कहाँ है बापा ! आहाहा ! अरे इस आत्मा को सुखी करना चाहते हैं न ? आहाहा ! परंतु सुखी कैसे हों उसका पता नहीं, इसलिये कैसे हो ? अरेरे ! कोई दुःखी रहना चाहे ? परंतु पता नहीं है। आहाहा ! पंचम काल के मुनि ऐसे होते हैं ? कि चौथे काल के अथवा पंचमकाल के, मुनि ऐसे ही होते हैं। आहाहा !

पुलाक का उदाहरण देते हैं, जो वह ऐसे दोषवाले हो तो भी मुनि हैं। परंतु

जो दोष है वह मुनिपना नहीं, मुनिपना तो यह है। आहाहा ! पुलाक बकुश हैं उन्हें भी मुनिपना... तो यह (प्रचुरस्वसंवेदना) है। समझ में आया ? आहाहा !

स्वसंवेदन... उससे जिसका जन्म है। हमारे आनंद के प्रचुर वेदन से हमारे वैभव का जन्म है, यह उपादान कहा, आहाहा ! उससे, उससे आया न सभी में निमित्त में भी उससे आया था। उपादान में भी उससे आया है। व्यवहार निमित्त है, उसका ज्ञान कराया... यही वस्तु निमित्त हो। ***गमन करे तब धर्मास्तिकाय ही निमित्त हो, चाहे अन्य, लाख करोड़ दूसरे द्रव्य हों अनंत परमाणु हों, परंतु वह कहीं गमन में निमित्त नहीं, निमित्त भी इतना सिद्ध करना, आहाहा ! परंतु हमारे निज वैभव में - ऐसा ही निमित्त होता है। उस निमित्त से यहाँ (कार्य) होता है - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! होता है तो हमारे अनुभव की सुन्दर मुद्रारूप वेदन से जिसका जन्म हुआ है। है न ? आहाहाहा !

इसप्रकार, जिस-जिस प्रकार हमारा ज्ञान का वैभव है... यह ज्ञान का वैभव कहलाये। आहाहा ! ***उसकी श्रद्धा, उसका आनंद, उसके वीर्य की स्फूर्ति, स्वरूप की रचना, यह सभी ज्ञान का वैभव है, आत्मा का वैभव है।*** आहाहा ! उस सभी वैभव से... देखा ? जिस-जिस प्रकार मेरे ज्ञान का वैभव वह, उस समस्त वैभव से... आहाहा ! `दर्शाता हूँ' समस्त वैभव से मैं दर्शाता हूँ। आहाहा ! यहाँ तक तो अभी सामान्य बात की... दिखाता हूँ, अब कहते हैं `***दिखायेंगे तो*** यह विशेष बात कही जायेगी।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !